ऊ नमो भगवते गोपीनाथाय,



भगवान जी का दुष्प्राप्य चित्र

दो अन्मोल रत्न

उों श्री गणेशाय नमः उों श्री गुरवे नमः
उों नमो भगवते गोपीनाथाय

गुरु बिना गति नहीं होती, गुरु दीक्षा बिना प्राणी के सब कर्म निष्फल होते है। शुभ कर्मो में गुरु सेवा उत्तम है, ऐसा साधक जन्म मरण से रहित होकर नरक नहीं भोगता है, ऐसे सेवक को कई अश्वमेघ यज्ञ के पुण्य का फल मिलता है।

जब साधक को श्री गुरुकृपा की लालसा हो, उन्हें श्री भगवान गोपीनाथ जी की शरण में आना चाहिए जिससे उसका मनोरथ सिद्ध हो सकता है।

भगवान जी संसार के प्राणियों की शुभ कामनाओं को संपूर्ण करने के लिए अनेक प्रकार के रूपों को धारण करते है। अविद्या रूपी रात्रि के अन्धकार मे भटकने वाले स्वस्वरूप से वंचित बने हुए मूढ़ों को सन्मार्ग दिखाते है तथा योग्य साधक को शिवमार्ग पर लेकर उसे आगे लेने में रंरत है। उनकी माहेश्वर्य विषयक सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादिबोध, स्वतन्त्रता, अलुप्तशक्ति, व नित्यतात्मक षाड्गुण्य सदा दृष्टिगोचर है केवल सच्ची पारखी दृष्टि की आवश्यकता है।

नामावली

नामावली सभी प्रकार के भय को समाप्त करने का एक रत्न है।

सामान्य जन के लिए केवल सच्ची श्रद्धा ही सब से कठिन कारक है, आज के इस तात्कालिक युग में, नाम लेना ही आध्यात्मिक मार्ग पर आगे बढ़ने का सब से प्रभावशाली तरीका है।

पूरी स्वच्छंदता तथा कर्त्तव्य परायण से नामावली के उच्चारण जितना सरल कुछ भी नहीं है।

श्री गुरु के सम्पूर्ण गौरव और कृपा पर नामावली गाते समय व्यक्ति व्यवहारिक और प्रभावशाली तरीके से अपनी श्रद्धा और प्रेम को प्रिय बनाकर व्यक्त कर सकता है, बार-बार नाम को दोहराने से उस स्थान की भी गरिमा बढ़ती है क्योंकि यह एक असामान्य शक्तिशाली और सुविधाजनक तरीका है, यह श्री गुरु के प्रति किसी के अटल भक्ति और श्रद्धा को सरल और व्यावहारिक रूप में बांधने के लिए है तथा इसे बहुत ही फलदायक कहा जाता है। इस नामावली के उच्चारण से श्री गुरु भक्तगण को सभी प्रकार के बुरे प्रभाव, डर तथा सभी बाधाओं से बचाते हैं। यह किसी आकांक्षी को जिदंगी में धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष को महसूस करने में मदद करता है। इसके लिए सबसे महत्वपूर्ण शर्त है कि भक्तगण में सरलता, समता तथा प्यार हो।

यह दैविय शक्ति स्वयं को अनेक आकार में प्रकट करती है तथा अलग-अलग व्यक्ति स्वाभाविक रूप से इनके विभिन्न रूपों के प्रति आकर्षित होते हैं। जो उनके स्वयं के दार्शनिक दृष्टि और परिपक्वता

पर निर्भर करता है। इसे स्वीकार करने से ही श्री गुरु महाराज सभी को आशीर्वाद देते हैं।

निसन्देह श्री भगवान जी हमारे आध्यात्मिक गुरु है, घोरतरी शक्तियों से सदा हमारे पालक है, भवसागर से हमारे तारक हैं ओर सदा हमारी बुद्धि को सत कर्मों में ही लगने के प्रेरक हैं, भगवान् जी का ध्यान् मनन व निदिध्यासन कल्पवृक्ष के समान सर्वेच्छापूरक है।

हम सावधान मन से भगवान जी के अनन्य गुणों का गाण इस नामावली के पाठ से अपने को महिमान्वित करें।

इस नामावली के सदा संकीर्तन से सद्गुरु महाराज प्रसन्न होते है और उस साधक को न कभी बीमारियों का भय ही होगा और न मृत्यु का भय ही पीड़ित करेगा, साधक को स्वात्मज्ञान के लाभ से तथा सारे दौर्भाग्य को नष्ट करने से, हर प्रकार का सुख और पाण्डित्य प्रदान करते हैं।

नामावली का पाठ;
सद्गुरवे नमः
गायत्रीः-

ऊँ भगवते गोपीनाथाय विध्महे
वैखुरीविहार देवाय धीमहि
तन्नो भैरवः प्रचोदयात् (तीन बार)
(संत शिरोमणि भगवान् गोपीनाथ जी की यह गायत्री इन महान् संत के देवत्व पद का अधिकारी होने का संकेत देती है)।

ध्यानम्;-
श्रीभैरवं शाश्वतं आदिदेवं
वरांगनाभ्यर्चित पादपद्मं
सूर्यस्य तापादपि भ्राजमानं
गुरुं दयालुं मनसा स्मरामि।। (दो बार)
हे मुनीन्द्र! महेशान! नाथित! अमृताकर!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।1।।
(हें मुनियों में श्रेष्ठ! हे शिवरूप! हे सबों से चहे हुए! हे अमरत्व प्रदान करने वाले, अमृत के खज़ाना!
हे गोपीनाथ! हे मेरी ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के स्वामी अर्थात मेरी इन्द्रियों को सन्मार्ग पर लगाने वाले, आपको नमस्कार हो। मुझ पर

सदा प्रसन्न रहो। मेरी बुराइयों की ओर ध्यान न दो। मुझे दया करो।

भक्तिरसं मदोन्मत्त! स्वतन्त्र! सुरपूजित!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।2।।

(सुरपूजित! - हे सारे देवगणों से भी पूजित, अभीष्ट होने के कारण सारे देवता लोगों से सदा पूजे जाने वाले)

नानावेषधर नानाकारैर्लक्ष्योप्यलक्षित!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।3।।

(नानावेषधर! - हे संसार के प्राणियों की शुभ कामनाओं को संपूर्ण करने के लिए अनेक प्रकार के रूपों को धारण करने वाले!)

प्राणापानगती रुद्धवा मध्यधाम्नि सदास्थित!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।4।।

त्रिगुणज्ञ! त्रिकालज्ञ! भूतरक्षा परायण!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।5।।

(भूत रक्षा परायण! - हे संसार के समस्त प्राणियों की रक्षा करने में तत्पर)

सदा सत्कार्य निरत! सच्चिदानन्द विग्रह!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।6।।

अंगसंस्पर्शजैः पुण्यैः पावनीकृत भूतल!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।7।।

(पावनीकृत भूतल! आपने सारी धरती को पवित्र किया है।)

पीतार्त लोक दु:खौघ-विष संभ्रान्त लोचन!

हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।8।।
सर्वसम्पत् प्रदानेन पात्रीकृत निजाश्रित!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।9।।
पद्युम्नपर्वतस्थायाः शारिकायाः प्रपूजक!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।10।।
पादामृतकणैः सद्यः सर्वसन्तापहारक!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।11।।
(पादामृतकणैः सद्यः सर्वसन्तापहारक! - अपने चरण कमलों के अमृत कणों से तत्क्षण भक्तों को प्रत्येक प्रकार के सन्ताप को नष्ट करने वाले!)
भूत्याच्छुरितगात्रेऽपि काश्मीरी कुंकुम प्रिय!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।12।।
सुधानिधे! विरूपाक्ष! रागातीत! निरंजन!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।13।।
सर्वामृतधरगात्र विशेषामृतस्यन्दन!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।14।।
भक्ति धनोष्मतापेन सर्वपाश विदाहक!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।15।।
(भक्तिधनोष्मतापेन सर्वपाश विदाहक! - जो कोई साधक आपकी भक्ति में लीन रहता है तो उसे आपकी भक्तिरूपी संपत्ति इतना तेज

प्रदान करती है कि उसके गर्मी से साधक के सभी सांसारिक बन्धन जल उठते हैं)

कुलाकुलपदासीन! महोर्मिरूपधारक!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।16।।
योगिनीभू योगगम्य! अमृताभ! सुदर्शन!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।17।।
कलादिक्षितिपर्यन्त भवमण्डलव्यापक!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।18।।
विश्वराट्! विश्वआराध्य! विश्वदर्शन ज्ञापक!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।19।।
(विश्वआराध्य! - हे सारे संसार में आराधना करने योग्य!)
श्री निधे! श्रीकर! श्रीश! श्रीधर! श्रीमतांवर!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।20।।
(श्री निधे! - हे लक्ष्मी के आधार भूत!)
भूतभावनाभूतेश! योग संसिद्धिधारक!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।21।।
भद्रंकर! भद्ररूप! विद्येश्वर! सदाशिव!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।22।।
(भद्रंकर - हे सबों को कल्याण करने वाले!)

दारुणदु:ख दग्धस्य दाहोत्सारण तत्पर!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।23।।
(दारुण दु:ख दग्धस्य दाहोत्सारण तत्पर् - हे असह्य दु:ख रूपी भयंकर अग्नि से जले हुए साधकों के उग्र ताप को मिटाने में तत्पर!)
कालतत्त्वज्ञ! कालेश! कालस्यक्षयकृत्वर!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।24।।
सर्वकामद! सर्वज्ञ! सर्वयज्ञफलप्रद!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।25।।
(सर्वयज्ञफलप्रद! हे प्रत्येक प्रकार के यज्ञों के अपरिमित फलको प्रदान करने वाले!)
मन्त्रद! मन्त्रतत्त्वज्ञ! मन्त्रेश! मन्त्रनायक!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।26।।
(मन्त्रद! हे मन्त्र ज्ञान को देने वाले!)
मृत्युञ्जय! महारुद्र! सदुपायै: सुदर्शन!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।27।।
(मृत्युञ्जय! हे मृत्यु पर विजय पाने वाले!)
उपायक्रमलभ्योऽपि अनुपाय उपासक!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।28।।
(बिना किसी जप तप आदि कठोर अभ्यास के सहज ही स्वरूप ज्ञान कराने वाले)

षट्त्रिंशत्तत्त्ववर्गस्य स्फुरदाकार आकर!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।29।।
कलानाथ! कलाधार! समस्तभुवनाधिप!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।30।।
भवाम्बोधि निमग्नानां समुत्तारण तारक!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।31।।
(भवाम्बोधि निमग्नानां समुत्तारण तारक - हे संसार रूपी सागर में डूबे हुए लोगों को पार करने के लिए नाविक रूप!)
सिद्धानां स्वस्थितानां च द्राक् परासिद्धिदायक!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।32।।
मायानिशिविभ्रान्तानां मूढ़ानां मार्गदर्शक!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।33।।
शैवचिन्तामणिनाथ! निष्कल! केवल! शिव!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।34।।
अघोरेश! वामदेव! वेदवेद्य! जयप्रद!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।35।।
(वामदेव! हे सबसे सुन्दर देव!)
सर्वपाशहर सर्वामयभीती विनाशक!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।36।।
महाकाल! महौजस्क! विषभक्षणतत्पर!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।37।।

विश्वेश्वर! विश्वाकार! सच्चिदानन्दलक्षण!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।38।।
(सच्चिदानन्दलक्षण - हे सत् चित् और आनन्द स्वरुप।)
काकासनप्रिय! वन्द्य! कृतान्त भयहारक!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।39।।
(वन्द्य! - हे सारे लोगों से वन्दना करने योग्य!)
शिवङ.कर! शिवाभिन्न! शिवसायुज्यकारक!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।40।।
(हे सभी साधकों का कल्याण करने वाले!)
पशुपाशहर! देव! सुभग! कुलनायक!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।41।।
(पशुपाशहर! - हे अज्ञानी जीवों को सांसारिक बन्धनों से मुक्ति दिलाने वाले!
तुर्यातीत! स्वरूपस्थ! कामधुक्! कामपूरक!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।42।।
(कामधुक! कामधेनु की तरह सारी कामनाओं को संपूर्ण करने वाले!)
निमीलिताक्षवर्गेन परमानन्दवाहक!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।43।।
सिद्धासनस्थित! सर्व मंगलानां प्रवर्धक!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।44।।
(सर्व मंगलानां प्रवर्धक! - हे मांगलिक कार्यों की वृद्धि करने वाले!)

मनोवाक् कायदोषस्य दाहने आशुशुक्षण!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।45।।
ईशानभक्तवल्लभ! आशुतोषय धूर्जटे!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।46।।
भूर्भुवः स्वःकर! भूप! भूसुराणामधीश्वर!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।47।।
(भूसुराणामधीश्वर! हे ब्रह्मणों के अधिपति!)
स्मरान्तक! मृडानीश! नादरूप! विलक्षण!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।48।।
वसनाशनदेनिष्ठ! सर्वप्राणभृतां वर!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।49।।
विघ्नभंजक! विघ्नेश! हृदम्बुजविकासक!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।50।।
(विघ्नभंजक! हे विघ्नों का नाश करने वाले!)
अनपेक्षेऽपि भक्तानां सर्वकामफलप्रद!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।51।।
(अनपेक्षेऽपि भक्तानां सर्वकामफलप्रद - भक्तों के न चाहने पर भी उनकी सारी इच्छाओं को संपूर्ण करने वाले।)
सर्वान्तरतमस्थेऽपि दुर्लक्ष्य! सर्वपूर्वज!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।52।।
(सर्वान्तर तमस्थेऽपि दुलक्ष्य! सारे प्राणियों के अन्तस्तल में विराजमान

होने पर भी बड़ी कठिनता से समझे जाने वाले!)
आकाश हृदयस्त्वं वै संकल्पाभ्रनिवारक!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।53।।
चित्तदुर्द्रुमबीजस्य समूलोन्मूलनेरत!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।54।।
सर्वेन्द्रियवृत्तिरीश! पंचकृत्यावभासक
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।55।।
सर्षि:सुरासुरैर्पूज्य! सर्वाशातृणपावक
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।56।।
सोमसौम्य! सत्त्वरूप! शुद्धस्फटिकसन्निभ!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।57।।
(सोम सौम्य! हे चन्द्रमा की तरह सुन्दर और आंखों को शीतलता प्रदान करने वाले!)
आधिव्याधिरुजार्तस्य सर्वभेषजभेषज
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।58।।
(आधिव्याधिरुजार्तस्य सर्व भेषज भेषज! हे मानसिक पीड़ाओं तथा शारीरिक पीड़ाओं या अन्य प्रकार की बीमारियों से दु:खित बने हुए लोगों को रोगमुक्ति की दवाई देने वाले हे, उत्तम वैद्य!)
भावाभावपरिच्छिन्न अमलोद्योतवाहक!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।59।।
तत्त्वज्ञानस्यज्ञानेन त्रिमलक्षालनेक्षम!

हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।60।।
जातवेद! बहुश्रुत! वासनावासिताशय!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।61।।
शुभ्राम्बरधर! शुभ्र! श्वभ्रहारी सुशोभन!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।62।।
अनामयपददाने सदा संउद्यतकर!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।63।।
प्रसरत्तीव्रधूम्राल्याः तापज्वरविलुम्पक!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।64।।
समस्तदुर्गतिसरित् समुत्तारणकोडुप!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।65।।
प्रद्युम्नपीठवासिन्या साक्षात्कारेणतोषित!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।66।।
श्वेताननस्य श्वैत्येन नयनानन्दवर्धक!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।67।।
(नयनानन्दवर्धक! - नेत्रों को आनन्द प्रदान करने वाले!)
सोऽहंसरस नादस्य नादेनोन्मत्त विग्रह!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।68।।
सुधयासिक्तदेहेन द्योतितभुवनत्रय!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।69।।
पद्महस्त! पद्मनेत्र! पद्मनाभवपुर्धर!

हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।70।।
शैवदर्शनमर्मज्ञ! मायाग्रन्थिविदाहक!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।71।।
श्वेतोष्णीषधर स्वामिन्! सूर्येन्द्वग्निविलोचन!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।72।।
प्रोज्झित मलसंघात! अवस्थात्रयवर्जित!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।73।।
देवदेव! उग्रतेज! लयकृत्लास्यतत्पर!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।74।।
(देवदेव! - हे देवादिदेव शिव!)
पूर्णेन्दुशकलाकार! परात्मन्! पूर्ण विग्रह!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।75।।
अज्ञानध्वंसक! देव! अनघ! भवतारक!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।76।।
(अज्ञानध्वंसक! हे अज्ञान को नष्ट करने वाले!)
सर्वानन्दमयाधार! सर्वभूतहितेरत!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।77।।
विषमेक्षण! आराध्य! कमनीय! जगत्प्रिय!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।78।।
शुभड.कर! विभो! शर्व! सर्वकारणकारण!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।79।।

(विभो! हे सर्वव्यापक!)
विद्यागुरो! जीवतुल्य! सर्वगीर्वाणअर्चित!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।80।।
रश्मिचक्रेश! योगीश! कुलधर्मप्रकाशक!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।81।।
गणेशार्कहरीशान! सर्वरूपमय प्रभो!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।82।।
(सर्वरूपमय प्रभो! हे समस्तरूपो को धारण करने वाले, सर्वशक्तिमान!)
शब्दब्रह्मस्त्वमोंकार! सर्वज्ञानप्रबोधक!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।83।।
(सर्वज्ञान प्रबोधंक! हे प्रत्येक प्रकार के ज्ञान को जागृत करने वाले)
कालसंकर्षण! तज्ञ! कालस्य कलनाकर!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।84।।
देवाधिदेवदेवेश! सम्पत्सर्वार्थसाधक!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।85।।
अनन्तात्मन! महोरस्क! व्यक्ताव्यक्तासनातन!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।86।।
('बब' विश्व की सारी प्रजा की रक्षा का भार सदा अपने कन्धों पर लिये हुए हैं।)
कर्ममूर्ते! महादेव! सर्वज्ञानस्य ज्ञापक!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।87।।
(कर्ममूर्ते! हे सदा कर्मशील दिखने वाले!)

चक्रेश्वर! मन्त्रराजन! शुभलक्षण लक्षण!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।88।।
(हमारी सारी इन्द्रियों को अपने अपने कर्मों में लगाने वाले!)
सर्वसिद्धिप्रद! साध्य! दशदिक्पाल संस्तुत!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।89।।
(हे साधना करके प्राप्त करने के योग्य!)
अनन्तचित्सुधासार! शक्तिप्रिय! सुधाकर!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।90।।
अकल! षडध्वातीत! चन्द्रकोटिसमप्रभ!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।91।।
(चन्द्रकोटि समप्रभ - करोड़ों चन्द्रमाओं के समान कान्ति को धारण करने वाले!)
यज्ञभुक्! यज्ञकृत्! यज्ञ! सत्यव्रत परायण!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।92।।
(यज्ञकृत! हे भक्तों को समय समय पर यज्ञानुष्ठान कराने की प्रेरणा देने वाले!)
शूलहस्त! महाराव! रावव्याप्तदिगन्तर!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।93।।
(शूल हस्त! - हे सदा चिमटी रूपी त्रिशूल को हाथ में धारण करने वाले!)

व्योमव्यापिन् महाकार! निजानन्दपदस्थित!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।94।।
भोगपाणे! महावीर्य! सुधावीचिमनोहर!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।95।।
अष्टात्रिंशत् कलानाथ! भुवनत्रयव्यापक!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।96।।
निष्कल! भैरवाधीश! सकलागमसारद!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।97।।
(निष्कल! - हे काल कलनाओं से हीन! अर्थात! हे निराकारस्वरूप!)
सत्त्वादित्रिगुणातीत सर्वप्राणभृतांवर!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।98।।
(सर्व प्राण भृतांवर! - हे सारे प्राण धारियों में सर्वोत्तम!)
भगवन्! तारकाधीश! ज्योतीरूप! सनातन!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।99।।
(सनातन! - हे सनातन धर्म स्वाभाव वाले!)
सर्वश्रेयस्कर! ईश! तत्त्वत्रयेसुसंस्थित!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।100।।
ध्याताध्येयपदस्थेऽपि ध्यानातीत! दुरासद!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।101।।
क्रियांकुशेन व्याकृष्ट मोह उन्मत्त वारण!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।102।।

प्रकाशानन्द साकार! "बबाख्य"! चक्रनायक!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।103।।
(प्रकाशानन्द साकार! हे प्रकाश और आनन्द के साकाररूप!)
त्रिकालज्ञ! त्र्य्याधार! त्रिकरूप! त्रिलोचन!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।104।।
(त्रिकालज्ञ - हे तीनों समयों को जानने वाले अर्थात, भूत, भविष्यत् और वर्तमान के ज्ञाता!)
जितेन्द्रिय! गुडाकेश! प्राणबुद्धिप्रवर्तक!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।105।।
परमात्मन्! महेशान! महाध्यानपरायण!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।106।।
(परमात्मन् - हे परमशक्ति स्वरूप!)
सदाकार! सदानन्द! सदा सद्भाव भावित!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।107।।
परावरज्ञ! ज्ञानेन्द्र! सर्व लक्षण भूषित!
हे गोपीनाथ! नमस्तुभ्यं मे प्रसीद दयां कुरु।।108।।
रम्या नामावलीमाला गोपीनाथस्य सद्गुरोः।
पिकेन गुरुदासेन भक्त्यावेशेन गुम्फिता।।
नित्यं संकीर्तनेनास्याः सद्गुरुः संप्रसीदति।
व्याधिमृत्यु भयं तस्य न क्वापि पीडयिष्यति।।
स्वात्मज्ञानस्य लाभेन दौर्भाग्य हरनेन च।

सर्व सौख्यं च पाण्डित्यं समवाप्नोति जापकः।।
जय गुरुदेव! जय गुरुदेव! जय गुरुदेव!

श्री गुरु कृपा

मानव शिशु-तुल्य सरल होकर जब मनोमालिन्य को धोने की हार्दिक अपेक्षा रखता है, माता-तुल्य गुरु उस समय अपने को प्रकट करके, शिष्य के मन के मल को धोने के भार को उठाने के लिए उपस्थित होता है। गुरु कृपा सदा सर्वदा अजस्र बहती रहती है। केवल क्षुद्र अहं से रहित होने की आवश्यकता है। सच्ची तड़प, अपने को पहचानने की सच्ची प्यास हो, तो गुरु स्वयं प्रकट हो जाते हैं। सच्चा शिष्य होना अतीव कठिन है।

साधक, श्री गुरु गीता की परिपेक्ष में श्री गुरु परिवार के विधि विधान से बन्धा हुआ है जिसकी जानकारी श्री गुरु गीता के पूरे विश्लेशन से सम्भव है। और साधक श्री गुरु कृपा का पात्र बनता है।

श्री गुरु गीता का जप करने वाला जो भी कुछ चाहे श्री गुरु कृपा से प्राप्त करता है। कामधेनु की तरह गुरु गीता हमारी सभी कामनाओं को पूर्ण करने का कारण बनती है।

गुरु गीता की समता करने वाला कोई शास्त्र नहीं। श्री गुरु से बढ़कर और कुछ भी नहीं है। गुरु सब से महान है और गुरु गीता

सबसे बड़ा शास्त्र है। गुरु स्वयं महान् तीर्थ है। गुरु गीता-मंत्र संसार-रूपी समुद्र को पार करने के लिए एक मात्र साधन है। गुरु गीता जो एक रत्न है, को बार बार दोहराने से अनन्त फल मिल जाता है। और हम श्री गुरु महाराज की कृपा दृष्टि के समीप आ जाते हैं

श्री गुरुगीता पाठ

वन्दे गुरुपद-द्वन्द्वं अवाङ्. मनस-गोचरम्।
रक्तशुक्ल-प्रभं उग्रं अप्रतर्क्यं परं महत्।।1।।
अचिंत्या-व्यक्त-रूपाय निगुर्णाय महात्मने।
समस्त-जगत्-आधार-मूर्तये ब्रह्मणे नमः।।2।।

ऋषय ऊचुः

गुह्याद् गुह्यतरा विद्या गुरु-गीता विशेषतः।
त्वत् प्रसादात् च श्रोतव्या तत् सर्वं ब्रूहि सूत नः।।3।।

सूत उवाच

कैलास-शिखरे रम्ये भक्ति-साधन-हेतवे।
प्रणम्य पार्वती भक्त्या शंकरं पर्यपृच्छत।।4।।

श्री पार्वती उवाच

ॐ नमो देव - देवेश परात्-पर जगद्गुरो।

सदाशिव महादेव गुरु-दीक्षां प्रदेहि मे।।5।।
केन मार्गेण भो स्वामिन् देही ब्रह्म-मयो भवेत्?
तत् कृपां कुरु में स्वामिन! नमामि चरणौ तव।।6।।

श्री शिव उवाच

मम रूपासि देवि त्वं त्वत् प्रीत्यर्थं वदाम्यहम्।
लोकोपकारकं प्रश्नं न कोपि कृतवान् पुरा।।7।।
दुर्लभं त्रिषु लोकेषु तत् शृणुष्व वदाम्यहम्।
गुरुर्ब्रह्म विना नान्य: सत्यं सत्यं वरानने।।8।।
यस्य देवे परा भक्ति: यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्था: प्रकाशन्ते महात्मन:।।9।।
गुकारस्तवन्धकार: स्यात् रुकारस्तन्निरोधक:।
अन्धकारनिरोधित्वात् गुरुर् इति अभिधीयते।।10।।
गकारेण ह्युकारस्य योगस् तिमिर वाचक:।
अंधकार-विनाशित्वात् गुरुर् इति अभिधीयते।।11।।
वेद-शास्त्रपुराणानि धर्म-शास्त्रादिकानि च।
मंत्र-यंत्राणि मीमांसा स्मृतीर् उच्चाटनादिकम्।।12।।
न्याय-विस्तारकल्पादि चेतिहासादिकं तथा।
गुरो: कृपां विना कश्चित् न प्राप्नोति कदाचन।।13।।
यद् अंघ्रि-कमल-द्वन्द्वं-द्वन्द्व ताप निवारकम्।
तारकं भव-सिन्धोश्च श्रीगुरुं प्रणमाम्यहम्।।14।।
वेद-शास्त्र-पुराणानि जानाति कृपया गुरो:।

अतो लोके गुरुः साक्षात् वर्तते वेद-तत्ववित्।।15।।
शैव-शाक्तागमा-दीनी तथान्ये बहवो मताः।
अपभ्रंशः समस्तानां जीवानां भ्रान्त-चेतसाम्।।16।।
यज्ञो व्रतं तपो दानं जपस् तीर्थं तथैव च।
गुरोस् तत्त्वं अविज्ञाय समग्रं निष्फलं भवेत्।।17।।
गुरोः ज्ञानात्मनो नान्यत् तत्वं सत्यं न संशयः।
तत् लाभार्थं प्रयत्नस् तु कर्तव्यः सु-मनीषिभिः।।18।।
देवि! ब्रह्म भवेत् देही त्वत् कृपार्थं वदाम्यहम्।
सर्व-पाप-विशुद्धात्मा श्री गुरोः पाद-सेवनात।।19।।
काले तीर्थावगाहस्य संप्राप्नोति फलं नरः।
गुरोः पादोदकं पीत्वा शेषं शिरसि धारयेत्।।20।।
शोषणं पाप-पड.कस्य दीपनं ज्ञान-चेतसाम्।
गुरोः पादोदकं पेयं संसारार्णव-तारणम्।।21।।
अज्ञान-मूल-हरणं जन्म-कर्म-निवारणम्।
ज्ञान-वैराग्य-सिद्धयर्थं गुरो पादोदकं पिवेत्।।22।।
गुरोः पादोदक-पानं गुरोर उच्छिष्ट-भोजनम्।
गुरोः मुर्तेः सदा ध्यानं गुरोः स्तोत्रं सदा जपेत्।।23।।
काशीक्षेत्रे निवासश्च जाहन्वी चरणोदकम्।
गुरुर विश्वेश्वरः साक्षात् तारकः ब्रह्म-वाचकः।।24।।
गुरोः क्षेत्रे निवासश्च गुरोः पादाड.किता धरा।

तीर्थ-राजः प्रयागोसौ गुरु-मूर्त्यै नमो नमः।।25।।
गुरोर् मूर्तिं स्मरेत् नित्यं गुरोर् नाम सदा जपेत्।
गरोर् आज्ञां प्रकुर्वीत गुरोर् मंत्रं विभावयेत्।।26।।
गुरोर् वक्त्रे स्थितं ब्रह्म प्राप्यते तत् प्रसादतः।
गुरोर् मूर्तेः सदा ध्यानं नारी पतिव्रता यथा।।27।।
स्वाश्रमं च स्वजातिं च स्वकीर्तिं पुष्टि-वर्धनम्।।
अन्यत् सर्वं परित्यज्य गुरु-रत्नं विभावयेत्।।28।।
गुरुं चिन्तयतां पुँसां सुलभं परमं सुखम्।
तस्मात् सर्व-प्रयत्नेन गुरोर् आराधनं कुरु।।29।।
गुरोर् वक्त्रे स्थिता विद्या गुरु-भक्त्या च लभ्यते।
त्रैलोक्ये स्फुट्-वक्तारो देवाद्याः सुर-पन्नगाः।।30।।
गुकारस्त्वन्धकारोस्ति रुकारस् तद् विनाशकः।
अज्ञान-ग्रासकं ब्रह्म गुरुर् एव न संशयः।।31।।
गुकारः प्रथमो वर्णो मायादि गुण-भासकः।
रुकारो द्वितीयो ब्रह्म माया-भ्रान्ति-विमोचकः।।32।।
एवं गुरुपदं श्रेष्ठं देवानां अपि दुर्लभम्।
हाहा-हूहू-गणैश्चैव गन्धर्वाद्यैश्च पूज्यते।।33।।
ध्रुवं तेषां च सर्वेषां नास्ति तत्वं गुरोः परम्।
आसनं शयनं वस्त्रं वाहनं भूषणादिकम्।।34।।
साधकेन प्रदातव्यं गुरोः सन्तोष-कारणम्।

गुरोर् आराधनं कार्यं यत् प्रियं तत् निवेदयेत्।।35।।
आत्मदारादिकं चैव सद्‌गुरुभ्यो निवेदयेत्।।
कृमि-कीट-भस्म-विष्टा-दुर्गन्ध-मल-मूत्रकम्।।36।।
श्लेष्मा-रक्त-वसा चर्म तत् क्षेत्रं च वरानने।
देहाभिमानिनो मूढ़ाः पतन्ति नरकार्णवे।।37।।
शरीरम् अर्थं सर्वस्वं सद्-गुरुभ्यो निवेदयेत्।
येनोद्धृतम् इदं सर्वं तस्मै श्री गुरवे नमः।।38।।
गुरुर ब्रह्मा गुरुर् विष्णुः गुरुः देवो महेश्वरः।
गुरुर् एव परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।39।।
गुरुः माता पिता चैव गुरुर् देवो हि बान्धवः।
गुरोर् देवात् परं नान्यत् तस्मै श्री गुरवे नमः।।40।।
हेतवे जगतां एवं संसरार्णव-तारणे।
प्रभवे सर्व-विद्यानां शम्भवे गुरवे नमः।।41।।
अज्ञान-तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन-शलाकया।
चक्षुर् उन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः।।42।।
अखण्ड-मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत् पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः।।43।।
स पिता स च मे माता स बन्धुः स च देवता।
संसार-प्रतिबोधार्थं तस्मै श्री गुरवे नमः।।44।।
यत् सत्येन जगत् सत्यं यत् प्रकाशेन भाति तत्।

यद् आनन्देन वोदेति तस्मै श्री गुरवे नमः।।45।।
यस्मिन् स्थितं इदं सर्वं यद् भानाद् भाति चैव यत्।
यत् प्रियात् प्रिय-पुत्रादि तस्मै श्री गुरवे नमः।।46।।
येन चिन्तयते देही चितं चेतयते यतः।
जाग्रत् स्वप्न सुषुप्त्यादि तस्मै श्री गुरवे नमः।।47।।
यस्य ज्ञानं इदं विश्वं न दृश्यं भिन्न-भावतः।
सदैक-रूप-रूपाय तस्मै श्री गुरवे नमः।।48।।
यस्य मन्त्रं तस्य मन्त्रं मन्त्रं यस्य महात्मनः।
अनन्य-भाव-भावाय तस्मै श्री गुरवे नमः।।49।।
यस्य कारण-रूपस्य कार्यरूपेण भाति यः।
कार्य-कारणतां एति तस्मै श्री गुरवे नमः।।50।।
नाना रूपं इदं विश्वं न केनापि अस्ति भिन्नता।
कार्य कारणतां एति तस्मै श्री गुरवे नमः।।51।।
शिवः क्रुद्धो गुरुस् त्राता गुरुः क्रुद्धो शिवो न हि।
तस्मात् सर्व-प्रयत्नेन श्री गुरुं शरणं व्रजेत्।।52।।
वन्दे गुरु-पद-द्वन्द्वं वाङ्.-मनोतीत-गोचरम्।
श्वेत-रक्त-प्रभा-युक्तं शिव-योगात्मकं परम्।।53।।
गुकारं तु गुणातीतं रुकारं रूप-वर्जितम्।
गुणातीत-स्वरूपं च यो दद्यात् स गुरुः स्मृतः।।54।।
अत्रि-नेत्रोद्भव-शीतः चतुर्बाहुस्-त्रिलोचनः।
यः चतुर् वदनो ब्रह्मा श्री गुरुः कथितः प्रिये।।55।।

(श्री गुरु ही एक तत्व है, जिसके बिना और कुछ है ही नहीं।)

अयं मयान्जलिः बद्धो दया-सागर! वृद्धये।
भवत्-चानुग्रहो भूयात् घोर-संसार-मुक्तये।।56।।

(इस कठिन संसार से छुटकारा पाने के लिए, श्री गुरु कृपा आवश्यक है।)

श्री गुरोः परमं रूपं विवेक-चक्षुषोऽग्रतः।
मन्दभाग्याः न पश्यन्ति ह्यन्धाः सूर्योदयं यथा।।57।।

(बदनसीब लोग (जिनकी अन्दर की आंखें बन्द हों) गुरु को पा नहीं सकते, जिस तरह उगते सूर्य में कोई शक नहीं, उसी तरह गुरु की महानता में भी कोई शक नहीं।)

श्रीनाथ-चरण-द्वन्द्वं यस्यां दिशि विराजते।
तस्यां दिशि नमस् कुर्याद् भक्त्या प्रतिदिनं प्रिये।।58।।
तस्यां दिशि सतत प्राञ्जलिः मंत्रपुष्पान्
संप्रक्षिपेत् सुखकरान् च द्विरेफयुक्तान्।
जागर्ति यत्र भगवान् गुरु-चक्रवर्ती
विश्वोदय-प्रलय-नाटक-नित्यसाक्षी।।59।।
सात्विकादि गुणैः प्रशस्त-विभवैः
व्याधि-हरैः दुष्करैः
प्राणायाम-शतैर् महेश्वर-पदं
न प्राप्यते मानवैः।

यत्-कारुण्य-लवेन प्राण-महतो
यत्तः स्वयं तत् क्षणात्
सेव्यः स परमार्थ-चिन्तन-परो
वेदार्थ-वित् श्रीगुरुः।।60।।
गुरुर् देवो जगत् सर्वं ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मकः।
गुरोः परतरं नास्ति तस्मात् सम्पूजयेत् गुरुम्।।61।।
सर्व-श्रुति-शिरो-रत्न विराजित-पदाम्बुजः।
वेदान्ताम्बुज-सूर्याय तस्मै श्री गुरवे नमः।।62
(सब वेदों के शिरोमणि आचार्य भी गुरु-देव के चरणों पर नतमस्तक हो जाते हैं।)
यस्मात् परतरं नान्यत् अस्ति किंचित् चगत् त्रये।
मनसा वचसा ध्येयः तस्मै श्री गुरवे नमः।।63।।
गुरु-देव-प्रसादेन ब्रह्मा-विष्णु-हरादिषु।
सामर्थ्यं प्राप्यते शिष्यैर् मोक्षस् तत् सेवया ध्रुवम।64।।
(गुरु की सेवा से मोक्ष मिलना तो निश्चित ही है। गुरु हम पर मेहरबान हों तो सभी देवता हम पर मेहरबान हो जाते हैं।)
ज्ञानी कर्मी तथा योगी गुरुर् ज्ञेयः सुखप्रदः।
त्रिभिः हीनं त्यजेत् दूरे मिथ्या-ज्ञान-प्रदर्शकम्।।65।
यस्य स्मरण-मात्रेण ज्ञानं उत्पद्यते स्वयम्।
ज्ञान-शेवधि-दात्रे वै तस्मै श्रीगुरवे नमः।।66।।

देव-किन्नर-गंधर्वाः पितृ-यक्षाश्च चारणाः।
मुनयोपि न जानन्ति गुरुशुश्रुषणाविधिम्।।67।।
ऋषयो नाग-सिद्धाश्च गुरु-सेवा-पराङ्. मुखाः।
महाहंकार संयुक्तास् तपो विद्या बलान्विताः।।68।।
संसार-कुहरावर्ते घटीयंत्रे यथा घटाः।
उपर्यधः भ्रमन्ते ते मुच्यन्ते न भवार्णवात्।।69।।
ध्यानं श्रृणु महादेवि सर्वानन्द-प्रदायकम्।
सर्वसौख्यकरं चैव भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्।।70।।
स्वदैशिकस्यैव शरीरचिन्तनम्
भवेत् अनन्तस्य शिवस्य चिन्तनम्।
स्वदैशिकस्यैव च नामकीर्तनम्
भवेत् अनन्तस्य शिवस्य कीर्तनम।।71।।
(अजर, अमर शिव और गुरुदेव में कोई अन्तर नहीं।)
श्रीमत् परंब्रह्म गुरुं वदामि
श्रीमत् परंब्रह्म गुरुं भजामि।
श्रीमत् परंब्रह्म गुरुं स्मरामि
श्रीमत् परंब्रह्म गुरुं नमामि।।72।।
ब्रह्मानन्दं परम-सुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं
द्वन्द्वातीतं गगन-सदृशं तत् त्वं - अस्यादि-लक्ष्यम्।
एकं नित्यं विमलं अचलं सर्वदा साक्षि-भूतम्

भावातीतं त्रिगुण-रहितं सद्गुरुं तं नमामि।।73।।
आनन्दं आनन्द-करं प्रसन्नं
ज्ञान-स्वरूपं निज-बोध-युक्तम्।
योगीन्द्रं ईड्यं भव-रोग-वैद्यम्
श्रीसद्गुरुं नित्यं अहं नमामि।।74।।
(मेरे सद्गुरु योगियों में श्रेष्ठ हैं।)
हृदम्बुजे कर्णिका-मध्यसंस्थे
सिंहासने संस्थित-दिव्य-मुर्तिम्
ध्यायेत् गुरुं चन्द्र-कलावतंसं
सत्-चित्-सुखाभीष्ट वरं ददानम्।।75।।
श्वेताम्बरं श्वेत-विलेप-पुष्पं
मुक्ता-विभूषं मुदितं द्विनेत्रम्।
वामांग-पीठे-स्थित-दिव्य-शक्तिं
मन्द-स्मितं शान्ति-कृपा-निधानम्।।76।।
यस्मिन् सृष्टि-स्थिति-ध्वंस-पिधानानुग्रहात्मकम्।
कृत्यं पंचविधं शश्वद् भासते तं नमाम्यहम्।।77।।
यत् पाद-रेणुभिर् नित्यं भक्ताः संसार-वारिधेः।
सेतुं बध्नन्ति वै सम्यक् दैशिकं तं उपास्महे।।78।।
प्रातः शिरसि शुक्लेब्जे द्विनेत्रं द्विभुजं गुरुम्।
वराभय-करं शान्तं स्मरेत् तं नाम-पूर्वकम्।।79।।
नित्यं शुद्धं निराभासं निराकारं निरन्जनम्।

नित्यबोधं चित् आनन्दं गुरुं ब्रह्म नमाम्यहम्।।80।।
यद आदिस्थं च संसार-वृक्ष-बीजं अनश्वरम्।
ब्रह्मरन्ध्र-सिताम्बोज-मध्यस्थं चन्द्र-मंडलम्।।81।।
आकाशे दिव्य-रेखांतः सहस्त्रदल-मंडिते।
हंस-रूपे त्रिकोणे च स्मरेत् तं मध्यतो गुरुम्।।82।।
सकल-भुवन-दुष्टिः कल्पिताशेष-दृष्टिः
अक्षगण-परमेष्टिः तत्-परार्थैक-दृष्टिः।
निखिल-शमन दृष्टिः संपदार्थैक दृष्टिः
भवगण-परमेष्टिः मेरु-सारैक दृष्टिः।।83।।
न गुरोर अधिकं न गुरोर् अधिकः
न गुरोर अधिकं न गुरोर अधिकः।
मम शासनतो मम शासनतः
मम शासनतो मम शासनतः।।84।।
इदं एव शिवं अयमेव शिवः
इदं एव शिवं अयमेव शिवः।
शिव-शासनतः शिव-शासनतः
शिव-शासनतः शिवशासनतः।।85।।
एवं विधं गुरुं ज्ञात्वा ज्ञानं उत्पद्यते स्वयम्।
तदा गुरूपदेशेन मुक्तोहं इति भावयेत्।।86।।
गुरुणा दर्शितैर् मार्गैः मनः शुद्धं तु कारयेत्।
अनित्यं खंडयेत् सर्वं यत् किञ्चित् ध्यान-गोचरम्।।87।।

ज्ञेयं सर्वं अनित्यं च ज्ञानं चामन उच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं समं कुर्यात् सद् गुरोर् उपदेशतः।।88।।
चैतन्यं शाश्वतं शान्तं व्योमातीतं निरञ्जनम्।
नाद-बिन्दु-कलातीतं तं गुरुं प्रणमाम्यहम्।।89।।
(श्री गुरु की चेतन आत्मा ही गुरु है)
स्थावरं निर्मलं शांतं जंगमं स्थिरं एव च।
व्याप्तं येन जगत् सर्वं तस्मै श्री गुरवे नमः।।90।।
ज्ञान-शक्ति-समारूढं तत्व-माला-विभूषितम्।
भुक्ति-मुक्ति-प्रदातारं तं गुरुं प्रणमाम्यहम्।।91।।
अनेक-जन्म-संप्राप्त-कर्म-बन्ध-विदाहिने।
ज्ञानानल-प्रभावेण तस्मै श्री गुरवे नमः।।92।।
न गुरोर् अधिकं तत्वं न गुरोर् अधिकं तपः।
तत्व-ज्ञानात् परं नास्ति तस्मै श्री गुरवे नमः।।93।।
मन् नाथः श्रीजगन् नाथो मद् गुरुः श्री जगद् गुरुः।
स्वात्मैव सर्व-भूतात्मा तस्मै श्री गुरवे नमः।।94।।
गुरुर् आदिर् अनादिश्च गुरुः परम-दैवतं।
गुरोःपरतरं नास्ति तस्मै श्री गुरवे नमः।।95।।
ध्यान-मूलं गूरोः मूर्तिः पूजा-मूलं गुरोः पदं।
मन्त्र-मूलं गुरोः वाक्यं मोक्ष-मूलं गुरोः कृपा।।96।।
सप्त-सागर-पर्यन्तं तीर्थ-स्नान-फलं परं।

गुरोर् अंघ्रि-जल-बिन्दोः सहस्राश-समं मतम्।।97।।
गुरुर् एव जगत् सर्वं ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मकं।
गुरोः परतरं नास्ति तस्मात् संपूजयेद् गुरुम।।98।।
ज्ञानं विना मुक्ति-पदं लभ्यते गुरु-भक्तितः।
गुरु-तुल्यः यतो नान्यः साधयेद् गुरुं मार्गतः।।99।।
एवं ज्ञात्वा महादेवि गुरोः निन्दां करोति यः।
स याति नरकान् घोरान् यावत् चन्द्र-दिवाकरौ।।100।।
गुशब्दस्तु गुणातीतो रूपातीतो रुकारकः।
गुण-रूप-विहीनत्वाद् गुरुर् इत्यभिधीयते।।101।।
करुणा-खड्ग-पातेन छेत्ता स्व-शिष्य-पाशकान्।
सम्यग् आनन्द-जनकः सद् गुरुः सोभिधीयते।।102।।
यावत् जीवेद् अयं जीवो गुरुं तावत् सदा स्मरेत्।
गुरु-लोपो न कर्तव्यः स्वच्छन्दो यदि वा भवेत्।।103।।
हुंकारेण न वक्तव्यं असत्यं वा कदाचन।
न स्थातव्यं गुरोर् अग्रे धृष्ट-रूपेण वा क्वचित्।।104।।
(श्री गुरु के सामने उद्धत रुप से कभी न बैठे)
गुरुं त्वंकृत्य हुंकृत्य जयेच्छो यो विवादकः।
अरण्ये निर्जले देशे स भवेद् ब्रह्म-राक्षसः।।105।।
(अपने गुरु से जो शिष्य 'तुम' कहके बोलता है, वह ऐसे जंगल में ब्रह्म-राक्षस बनता है जहां पानी भी न हो।)
मुनिभिः पन्नगैर् वापि सुरैर् वा शापितो यदि।
काल-मृत्यु-भयाद् वापि गुरुः रक्षति पार्वति।।106।।

अशक्ता: हि सुराद्याश्च ह्यशक्ता: मुनयस तथा।
गुरु-शापेन ते क्षीणा: क्षयं यान्ति न संशय:।।107।।
श्रुति-स्मृति-तत्व-ज्ञानं प्राप्नोति गुरु-सेवया।
ते वै संन्यासिन: प्रोक्ता इतरे वेश-धारिण:।।108।।
(तत्वज्ञान की अभिलाषा रखकर गुरु की सेवा करने वाले शिष्य ही सच्चे सन्यासी है)
यत्रैव तिष्ठति सोपि स देश: पुण्य-भाजनम्।
मुक्तस्य लक्षणं देवि तवाग्रे कथितं मया।।109।।
मन्त्रराजं इदं देवि! गुरुर् इत्यऽक्षर-द्वयम्।
स्मृति-वेदार्थ-वाक्यानां गुरु: साक्षात परं पदम्।।110।।
नित्यं ब्रह्म निराकारं निर्गुणं बोधयेत परम्।
पूर्णं ब्रह्म निराभासं दीपो दीपान्तराद् यथा।।111।।
गुरो: कृपा-प्रसादेन ह्यात्मारामं निरीक्षयेत्।
अनेन मुक्ति-मार्गेण स्वात्म-ज्ञानं प्रवर्तते।।112।।
(श्री गुरु जब प्रसन्न होकर दया करते है तो शिष्य अपने ही अन्दर ब्रह्म को पाते है।)
आब्रह्मस्तम्भ-पर्यन्तं परमात्म-स्वरूपकम्।
स्थावरं जंगमं सर्वं प्रणमामि जगद् गुरुम्।।113।।
वन्देहं सत् चिद् आनन्दं भेदातीतं गुरो: पदम्।

नित्यं पूर्णं निराभासं निर्गुणं स्वात्म-संस्थितम्।।114।।
परात् परतरं ध्येयं नित्यं आनन्द-कारकम्।
हृदयाकाश-मध्यस्थं शुद्ध-स्फटिक-सन्निभम्।।115।।
स्फाटिके प्रतिमा-रूपं दृश्यते दर्पणे यथा।
तथात्मानं चिद् आकाशे संस्मरेत् सोहं इत्युत।।116।।
अंगुष्ठ-मात्रं पुरुषं ध्यायेत् च, चिन्मयं हृदि।
तत्र स्फुरति भावो यः श्रृणु तं कथ्याम्यहम्।।117।।
अजोहं अजरं नित्यं अनादिं नित्यतां गतम्।
अविकारं चिदानन्दं प्रणयात् तं स्मराम्यहम्।।118।।
अपूर्वानन्ददं नित्यं स्वयं ज्योतिर् निरामयम्।
विरजस्कं परं शम्भुं आनन्दं परं अव्ययम्।।119।।
अगोचरं तथागम्यं नाम-रूपादि-वर्जितम्।
निःशब्दं तं विजानीयात् स्वभावं ब्रह्म पार्वति।।120।।
यथा निज-स्वभावेन कर्पूर-कुसुमादिषु।
शीतोष्णादि स्वभावश्च तथा ब्रह्म च शाश्वतम्।।121।।
स्वयं तथाविधो भूत्वा स्थातव्यं यत्रकुत्रचित्।।
कीटो भृड.ग इव ध्यानाद् यथा भवति तादृशः।।122।।
किं अत्र बहुनोक्तेन शास्त्र-कोटि-शतेन च।
दुर्लभा चित्त-विश्रान्तिः सद् गुरोः करूणां विना।।123।।
(श्री गुरु की दया के बिना मन को शान्त करना आसान

नहीं।)

निमेषार्धार्ध-पातेन यद् वाक्याद् वै विलोक्यते।
स्वात्मा च स्थैर्यं आदत्ते तस्मै श्री गुरवे नमः।।124।।
गुरु-ध्याने सदा सक्तो देही ब्रह्ममयो भवेत्।
पिण्डे पदे तथा रूपे मुक्तोसौ नात्र संशयः।।125।।
स्वयं सर्वमयो भूत्वा तत् पदं चावलोकयेत्।
परात् परतरं नान्यत् सर्वं एव निरामयम्।।126।।
तस्यावलोकनाद् एव सर्व-सड.ग-विवर्जितः।
एकाकी निस्पृहः शान्तः तिष्ठेत् तस्य प्रसादतः।।127।।
लब्धं वापि अथवा अलब्धं अल्पं वा बहुलं तथा।
निष्कामैर् एव भोक्तव्यं सदा सन्तुष्ट-मानसैः।।128।।
सर्वज्ञ-पदं इत्याहुः देही सर्वमयो हि सः।
सदा शान्तः सदानन्दो रमते यत्रकुत्रचित्।।129।।
स्वकुलाकुल-कोटींश्च तारयेत् सोपि तत् क्षणात्।
अतस्तं सद् गुरुं ज्ञात्वा त्रिकालं अभिवन्दयेत्।।130।।
साष्टांग-प्राणिपातेन स्तुवन् नित्यं गुरुं भजेत्।
भजनात् स्थैर्यं आप्नोति स्व-स्वरूपमयो भवेत्।।131।।
शिवे रुष्टे गुरुस् त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन।
लब्ध्वा कुल-गुरुं सम्यग् गुरोः सेवां समाचरेत्।।132।।
मधु-लुब्धो यथा भृंगः पुष्पात् पुष्पान्तरं व्रजेत्।

ज्ञान-लुब्धस् तथा शिष्यो गुरोः गुर्वन्तरं व्रजेत।।133।।
ज्ञान-हीनो गुरुस् त्याज्यो मिथ्या-वादी हि दाम्भिकः।
स्व-विश्रान्तिं न जानाति परान् विश्रान्तयेत् कथम्?134।।
शिलायां किं परं पारं? शिला-संगं परित्येजत्।
स्वयं तीर्णो भवेत् नासौ परं निस्तारयेत् कथम्?135।।
न वन्दनीयाः कष्टेपि दर्शने भ्रान्ति-कारकाः।
गुरवः वर्जनीयाः स्युः सुशिष्यैः सन्मताश्रयैः।।136।।
शिष्यस्तु नात्र हे देवि! प्रशंस्यो येन-केन-चित्।
सोपि ज्ञानं अवाप्नोति भक्त्या परमया गुरोः।।137।।
गूढ़ाः दृढ़ाश्च भक्ताश्च मौन-व्रत-परायणाः।
सदा संत्यक्त-कामाश्च पंचधा गुरवो मताः।।138।।
श्रीगुरोः पादुकां मुद्रां मुख-मन्त्रं च गोपयेत्।
गुरोः कृपार्जितं सम्यग् वस्तु अभीष्ट-करं सदा।।139।।
गुरु-त्यागाद् भवेत् मृत्युः मन्त्र-त्यागाद् दरिद्रता।
गुरु-मंत्र-परित्यागी रौरवं नरकं व्रजेत्।।140।।
पाखण्डिनः पापरताः नास्तिकाः भेदबुद्धयः।
स्त्रीलम्पटाः दुराचाराः कृतघ्नाः बक-कृत्तयः।।141।।
(कई लोग पाखण्डी होते हैं-बाहर से अच्छे गुणों का प्रदर्शन करते हैं लेकिन अन्दर से दुष्ट होते हैं। ऐसे श्री गुरु कृपा से वञ्चित रहते हैं।)
कर्म-भ्रष्टाः क्षमा-हीनाः निन्दकास् तर्क-वादिनः।

कामिनः क्रोधिनश्चैव हिंसकाश्च शठास्तथा।।142।।
त एते गुरुभिस् त्याज्याः सर्व-धर्म-बहिष्कृताः।
ज्ञानं शिष्याय दातव्यं सदा पाप-विरोधिने।।143।।
सत् शिष्यैः गुरवः सेव्या ऐक्य-भक्त्या विचार्य च।
न यावद् गुरु-कारुण्यं लभेन्न मोक्ष कारणम्।।144।।
गकारस्तु शिवः प्रोक्त उकारो ब्रह्म चोच्यते।
रुकारस्तु रविः प्रोक्तो गुरुः सर्वार्थ-कोविदः।।145।।
महतां चैव भूतानां प्रलये सम् उपस्थिते।
स्वतन्त्रस्तु शिवो भूत्वा संपूर्णो भवति महान्।।146।।
उपदेशो ह्ययं देवि गुरु-मार्गेण मुक्तिदः।
गुरु-भक्तिस् तथा ध्यानं सकलं तव कीर्तितम्।।147।।
ध्यात्वा प्रत्यक्षं एवैतद् भजामि च वदामि च।
लोकोपकारकं देवि गुरुं अभ्यर्चयेत् सदा।।148।।
नसास्म ते नाथ! पदारविन्दं
बुद्धीन्द्रिय-प्राण-मनो-वचोभिः।
यैः चिन्त्यते तद् हृदिभाव-युक्तैर्
मुमुक्षुभिः कर्म-फल-विपाकात्।।149।।
ज्ञान-प्रकाशं विभवेष्ट-दोहं
स्मराम्यहं देव-पदाब्ज-द्वन्द्वम्।
अत्यन्त-विज्ञान-मयं विशुद्धं
गुरुं चिदानन्द-घनं भजामि।।150।।

श्री पार्वती उवाच

पिंडं तु किं महादेव पदं किं समुदाहृतम्?
रूपातीतं तु यद् रूपं तत् त्वं आख्याहि शंकर।।151।

श्री शिव उवाच

पिंडं कुंडलिनी शक्तिः पदं हंस उदाहृतः।
रूपं बिन्दुर् इति ज्ञेयं रूपातीतो निरन्जनः।।152।।
लौकिकस्तु गुरुर् भाति भक्त्यर्थे हि परस्तु यः।
ज्ञानेन भावयेत् सर्वं कर्म निष्काम-कार्यतः।।153।।
(गुरु दुनिया में साधारण मनुष्य दीखते हैं। जब शिष्य भक्तिपूर्वक उनकी सेवा करे, तो वे समय पर उसे महान् दीखते हैं।)
यद्यप्यऽधीताः निगमाः षडंगाः सागमाः प्रिये।
अध्यात्मादीनि शास्त्रानि ज्ञानं नास्ति गुरुं विना।।154।।
(यदि कोई चारों वेद, आगम शास्त्र, वेदान्त दर्शन, न्यायदर्शन आदि जीवात्मा-परमात्मा-संबन्धी शास्त्र भी पढ़े, तो भी तब तक उसे ज्ञान नहीं मिलता जब तक श्री गुरु उस पर कृपा न करे।)
निरस्य सर्वसन्देहं एकीकृत्य च दर्शनम्।
तपस्यन्तं रहस्यस्थं भजामि गुरुं ईश्वरम्।।155।।

लौकिकात् कर्मणो याति न हि तत् परमं पदम्।
ज्ञानं च भावयेत् सर्वं कर्म निष्काम-काम्यतः।।156।।
गुरुगीतां इमां देवि गुरोस् तत्वार्थ-बोधिकाम्।
भव-व्याधि-विनाशाय स्वयं एव जपेत् सदा।।157।।
श्रीगीता भक्ति-भावेन पठ्यते श्रूयतेथवा।
लिखित्वा च प्रदानेन कामना सफला भवेत्।।158।।
(जो भक्तिपूर्वक इसकी प्रतिलिपि बनाकर किसी को दे, तो उसकी कामना सफल हो जाती है)
गुरोः गीताक्षरैः बद्धं मन्त्र-राजं इमं जपेत्
अन्ये च विविधाः मन्त्राः कलां नार्हन्ति षोडशीम्।।159।।
सर्व-पाप-समूहघ्नं सर्व-दारिद्रय्-वारकम्।
काले मृत्यु-भय-हरं सर्व-संकट-नाशकम्।।160।।
यक्ष-राक्षस-भूतघ्नं चौर-व्याघ्र-भयापहम्।
महा-व्याधि-हरं चैव सर्वोपद्रव-नाशकम्।।161।।
सर्व-दुर्भिक्ष-शमनं महारोग-निवारकम्।
यत्फलं गुरु-सान्निध्यात्तत्फलं पठनाद् भवेत्।।162।।
अनन्तफलं आप्नोति गुरुगीता-जपेन हि।
श्रेयसे पठतो जन्तोर् विभूतिः सर्वदा भवेत्।।163।।
कुशाजिनास्तृतासने निश्चले निर्मले शुभे।

उपविश्य समं काये जपेद् एकाग्र-मानसः।।164।।
ध्येयं शुक्ले च शांत्यर्थं वशे रक्तासनं प्रिये।
अभिचारे कृष्णवर्णं पीतवर्णं धानागमे।।165।।
शान्त्यायुत्तरतः जाप्यं वशे पूर्व-मुखोदितम्।
दक्षिणे मारणं प्रोक्तं स्तम्भनं पश्चिमे मुखे।!166।।
मुक्तिदं सर्व-भूतानां बन्ध-मोक्ष-करं परम्।
सर्व-सौख्यकरं नृणां गुरुभ्यो भक्ति-वर्धनम्।।167।।
दुष्कर्म-नाशकं चैव सुकर्म-सिद्धिदं तथा।
असिद्धं साधयेत् सर्वं नव-ग्रह-भयापहम्।।168।।
दुःस्वप्न-नाशकं चैव सुस्वप्न-फल-दायकम्।
सर्व-शान्ति-करं नित्यं वन्ध्यादिष्वपि पुत्रदम्।।169।।
अवैधव्य-करं स्त्रीणां सौभाग्य-जननम सदा।
आयुर् आरोग्यं ऐश्वर्य-पुत्र-पौत्र-विवर्धनम्।।170।।
रोगं दुःखं भयं विघ्नं विनाश्य सुख-कारकम्।
सर्वबाधाप्रशमनं धर्मार्थ-काम-मोक्षदम्।।171।।
यत् यत् कामयते कर्मी तत् तद् आप्नोति निश्चितम्।
कामदं कामधेनुश्च कल्पितं कल्पवृक्षकम्।।172।।
चिन्तामणिं चिन्तितस्य सर्व-मंगल-दायकम।
लिखित्वा दापयेद् देवि श्रेयः परं अवाप्नुयात्।।173।।
कामेन जपते यो वै तस्य काम-फल-प्रदम्।

यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम्।।174।।
जपन्ते शाक्त-सौराश्च शैव-गाणेश-वैष्णवाः।
सर्वेभ्यो सिद्धिदं देवि सत्यं सत्यं न संशयः।।175।।
अथ काम्य-जप-स्थानं कथयामि वरानने।
सागरान्ते नदी-तीरे तीर्थे हरि-हरालये।।176।।
शक्तिदेवालये गोष्ठे सर्वदेवालये शुभे।
वटस्य धात्र्याः मूले वा तथा वृन्दावनेपि वा।।177।।
पवित्रे निर्मले स्थाने नित्यानुष्ठानकेपि वा।
समाहितेन मौनेन जपं एतत् समारभेत्।।178।।
जपेन फलमाप्नोति ह्यश्वमेध-शतस्य च।
सिद्धयन्ति सर्व-कार्याणि जन्मसाफल्य हेतवे।।179।।
संसार-मल-नाशाय भव-पाश-निवृत्तये।
गुरुगीताम्भसि स्नानं कर्तव्यं साधकैः सदा।।180।।
स्थानानि तानि सर्वाणि पवित्राणि न संशयः।
गुरवः यत्र तिष्ठन्ति सद्-असद्-ब्रह्मवित्तमाः।।181।।
स्मर्तव्यः सर्वदा भक्त्या गुरुः शिष्येण धीमता।
यस्य स्मरणमात्रेण पुनर् जन्म न विद्यते।।182।।
स एव सर्वसंपत्ति तस्मात्संपूजयेद् गुरुं।
गुरोस तीर्थे वसेत् नित्यं सर्वत्र सुख-भाग् भवेत्।।183।।
समुद्रस्य यथा तोयं क्षीरे क्षीरं जले जलम्।

कुम्भे कुम्भे यथाकाशः यथात्मा परमात्मनि।।184।।
यथा ज्ञानेन जीवात्मा परमात्मनि वै तथा।
ऐक्येन रमते ज्ञानी 'गुरुगीता'-जपेन हि।।185।।
गुरुगीता-समं नान्यत् नान्यत् तत्त्वं गुरोः परम्।
गुरोः परतरं नान्यत् सत्यं उक्तं वरानने।।186।।
अनेक-जन्म-विहिताः यज्ञ-दान तपः क्रियाः।
सर्वाः सफलतां यान्ति गुरोः सन्तोष-मात्रतः।।187।।
(मनुष्य अनेक जन्मों में तपस्या, यज्ञ, दान आदि क्रिया करे, गुरु प्रसन्न हों जाएं, तो सभी क्रियाएं फल देती है, अन्यथा नहीं।)
इदं रहस्यं परमं तवाग्रे कथितं मया।
देयं सुगोप्यं शिष्याय गुरु-सेवारताय वै।।188।।
अतीव-बुद्धि-प्राचुर्य-गुरु-भक्तिमते सते।
मन्त्र-राजं इदं गुह्यं दातव्यं केवलं प्रिये।।189।।
गुरु-मन्त्रं मुखे यस्य तस्य सिद्धिर् भवेद् ध्रुवं।
दीक्षया सर्वकर्माणि सिद्ध्यन्ति गुरुपुत्रके।।190।।
गुरु-भावः परं तीर्थं अन्यतीर्थं निरर्थकम्।
तेनैव मुच्यते शिष्यो घोर-संसार-बन्धनात्।।191।।
विद्या धनं बलं दानं भाग्यं तेषां निरर्थकम्।
सर्वदा ये न कुर्वन्ति गुरु-सेवां वरानने।।192।।
(जो लोग अपने गुरु की सेवा नहीं करते उनकी विद्या,

उनका धन, बल, दान, भाग्य-सब बेकार है।)

गुरवो बहवः सन्ति शिष्य-वित्तापहारका:।
स गुरुः दुर्लभो देवि शिष्य-सन्ताप-हारकः।।193।।

यस्य प्रसादात् अहं एव सर्वं
मयैव सर्वं परिकल्पितं च।
इत्थं विजानामि सदात्मरूपं-
तस्यांघ्रि-पद्मं प्रणतोस्मि नित्यम्।।194।।

संसार-सागर-समुद्धरणैक-मन्त्रं
ब्रह्मादि-देव-मुनि-पूजित-सिद्धमन्त्रम।
दारिद्रय-दुःख-भय-शोक-विनाश-मन्त्रं
वन्दे महाभय-हरं गुरुराज-मन्त्रम्।।195।।
वन्दे महाभय हरं गुरुराज मन्त्रम,
वन्दे महाभय हरं गुरुराज मन्त्रम्।।

हे सद्गुरु भगवान गोपीनाथ जी!
आप अनुन्तर हैं, आप की तुलना में कोई दूसरा नहीं है, आप कल्याण स्वरूप हैं, आप प्रत्येक प्रकार की वृद्धि अर्थात आत्मिक, भौतिक और दैहिक उन्नति को प्रदान करने वाले हैं, आप अनेक रूपों वाले हैं, ऐसे शिवरूप आप गुरु महाराज को हमारा नमस्कार हों।
जिन महानभावों ने इस प्रकाशन को साधको के हितार्थ

सम्भव बना दिया, उन्हें दुख, भय और शोक दूर होगा ही तथा श्री गुरु की भक्ति प्राप्त होगी, कामना सफल होगी और तत्वज्ञान प्राप्त होगा। तथास्तो!

श्री गुरु गीता में गुरु - शिष्य सम्बन्ध पर प्रकाश डाला गया है और इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि सद्गुरु की कृपा के बिना शिष्य आध्यात्मिक मार्ग पर प्रगति नहीं कर सकता। श्री गुरु गीता व्याख्या सहित भगवान गोपीनाथ जी ट्रस्ट पम्पोश ऐन्कलेव से 20 रु0 में प्राप्त हो सकती है।

तथा

भगवान गोपीनाथ जी की विशेष पूजा "सद्गुरु देवस्य नामावली" व्याख्या सहित जगत गुरु भगवान गोपीनाथ जी चैरिटेबल कल्चरल, रिसर्च फाउन्डेशन उत्तम नगर से 15 रु0 में उपलब्ध हैं। जो हर शिष्य के लिए जरूरी है।

प्यार सहित,

प्राणनाथ कौल